सामाजिक-लिंगभेद

लेखक
डॉ॰ सुभाष चन्द्र
एम॰ एन॰ कॉलेज, शाहबाद (मा॰)

प्रकाशक :
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र - 136 119 (भारत)
KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA - 136119 (INDIA)

संदेश

बड़े गर्व व हर्ष का विषय है कि स्वर्ण-जयंती के अवसर पर 'सामुदायिक सेवा योजना' के माध्यम से विश्वविद्यालय ने जल संरक्षण, पर्यावरण-संरक्षण, साक्षरता, सामाजिक सद्भाव का निर्माण करने तथा सामाजिक-लिंगभेद जैसी गम्भीर बुराई के खिलाफ जन-जागरण अभियान चलाया। सामाजिक-लिंगभेद सभ्य समाज के लिए अभिशाप है। मुझे विश्वास है कि इस समस्या के कारण व निदान समझने में यह पुस्तिका महत्त्वपूर्ण होगी।

प्रोफेसर टी.आर. कुण्डू, अधिष्ठाता महाविद्यालय के कुशल नेतृत्व में यह रचनात्मक योजना बनी और प्रभावी ढंग से लागू हुई। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में संलग्न महाविद्यालयों के प्राचार्य, शिक्षक व छात्र बधाई के पात्र हैं।

प्रोफेसर रामफल
कुलपति
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

महिला अध्ययन एवं शोध केन्द्र

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मनुष्य का व्यवहार उसके विचारों से परिचलित होता है और उसके विचारों के निर्माण में पारिवारिक परिवेश, शिक्षा एवं सांस्कृतिक-परम्पराओं का गहरा प्रभाव पड़ता है। भारतीय समाज और विशेषकर हरियाणा के समाज में पुरुष-प्रधान विचारों का वर्चस्व है। इसकी वजह से स्त्रियों को उचित अवसर नहीं मिल पाते, उनके साथ हर स्तर पर भेदभाव होता है। असल में कन्या-भ्रूण-हत्या, बालिका-हत्या, दहेज जैसी गम्भीर सामाजिक समस्याओं की जड़ें पुरुष-प्रधान विचारधारा में हैं। इन विचारों को जड़ से उखाड़कर ही समाज प्रगति की राह पर आगे बढ़ सकता है। कितनी विडम्बना है कि धन, ज्ञान व शक्ति का प्रतीक 'लक्ष्मी', 'सरस्वती' और 'दुर्गा' के साथ स्त्री की तुलना की जाती है, लेकिन व्यवहार में उसे इन तीनों से वंचित कर दिया गया है।

हरियाणा राज्य के साक्षर-महिला समूहों तथा महाविद्यालयों के महिला-प्रकोष्ठों की प्रभारियों की संगोष्ठी (17 मार्च, 07) के अवसर पर डॉ॰ सुभाष चन्द्र द्वारा लिखित 'सामाजिक लिंगभेद' नामक पुस्तक का प्रकाशन इस विश्वास के साथ कर रहे हैं कि यह समाज में प्रचलित मिथ्या-धारणाओं को दूर करके व स्वस्थ समाज निर्माण करने में सहायक सिद्ध होगी। यदि इस महत्त्वपूर्ण कार्य में यह जरा भी सफल हुई तो महिला अध्ययन एवं शोध केन्द्र, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र इसे अपनी उपलब्धि समझेगा।

ऋचा तंवर

डॉ॰ ऋचा तंवर

निदेशक

भूमिका

मानव समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक विकास में स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री के प्रति हर स्तर पर भेदभाव किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी सम्पूर्ण क्षमताओं का विकास नहीं हो पाता और समाज उसकी सम्पूर्ण ऊर्जा के लाभ से वंचित हो जाता है। पितृसत्ता की विचारधारा स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती, स्त्री को पुरुष से निम्न मानती है। कन्या-भ्रूण-हत्या, बालिका-हत्या, छेड़छाड़, बलात्कार, दहेज, मारपीट, उत्तराधिकार से वंचित करने आदि के रूप में स्त्री को घोर अत्याचार सहन करने पड़ते हैं। जब तक समाज के सभी वर्गों को विकास के समान अवसर नहीं मिलेंगे तब तक सुखी, समृद्ध व शान्तिपूर्ण समाज के निर्माण का सपना साकार नहीं हो सकता। वास्तव में किसी समाज में स्त्री की स्थिति व उसके प्रति रवैया उस समाज के सुसभ्य व सुसंस्कृत होने की कसौटी व पैमाना है।

आधुनिक प्रगति के बावजूद हरियाणा के समाज के बहुत बड़े हिस्से पर पितृसत्तात्मक विचारों की काई जमी हुई है, जो समाज के विकास में बाधक है। हमारे समाज में प्रचलित रीति-रिवाज, गीत, चुटकले, हंसी-मजाक, मुहावरे, गालियां स्त्रियों के प्रति असमानता व अन्याय को दर्शाते हैं। लड़के के जन्म से जुड़े खुशी के अनुष्ठान तथा लड़की के जन्म के साथ ही मातमी-वातावरण परिवार में स्त्री-विरोधी दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं। कन्या-भ्रूण-हत्या के चलते लिंग-अनुपात का असंतुलन मात्र स्त्रियों की संख्या कम होने की समस्या नहीं है, बल्कि समाज में मानवीय मूल्यों की गिरावट की पराकाष्ठा व पाश्विकता को भी दर्शाता है।

समाज में स्वस्थ विचारों के निर्माण और प्रसार में विश्वविद्यालय - महाविद्यालयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ये संस्थाएं सुसभ्य-सुसंस्कृत समाज निर्माण के लिए स्वस्थ दृष्टि रखने वाले नागरिक निर्माण के केन्द्र हैं। अपनी स्वर्ण-जयंती के अवसर पर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने 'सामुदायिक सेवा योजना' बनाई, जिसके अन्तर्गत सामाजिक-लिंगभेद, जल-संरक्षण, पर्यावरण-संरक्षण व सामुदायिक सद्भाव के निर्माण के प्रति जागृति को मुख्य कार्य के रूप में चिन्हित किया है। इस योजना को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए प्रत्येक महाविद्यालय ने एक 'स्वर्ण-जयंती' गांव का चयन किया। महाविद्यालय की एन.एस.एस., महिला-प्रकोष्ठ, एन.एस.एस. व सांस्कृतिक गतिविधियों से शिक्षकों व छात्रों ने बहुआयामी रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से 'सामुदायिक सेवा योजना' को अमली जामा पहनाया।

सामाजिक-लिंगभेद की समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इस योजना के अन्तर्गत इस पुस्तिका का प्रकाशन किया जा रहा है। हम डॉ॰ सुभाष चन्द्र, एम.एन. कॉलेज के धन्यवादी हैं, जिन्होंने इस कार्य की जिम्मेवारी ली और मेहनत से निभाया। हम डॉ॰ सुनीता पठानिया व डॉ॰ ऋचा तंवर के आभारी हैं, जिन्होंने अपने अमूल्य सुझाव दिए। हम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. रामफल के आभारी हैं, जिन्होंने स्वर्ण-जयंती के अवसर पर इसे प्रकाशित करने की स्वीकृति दी। उनके वरद हस्त के बिना 'सामुदायिक सेवा योजना' असंभव थी।

आशा है कि इस समस्या की गंभीरता को समझने में यह पुस्तिका अवश्य सहायक सिद्ध होगी।

प्रो. टी. आर. कुण्डू
अधिष्ठाता, महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

सामाजिक-लिंगभेद

आज के युग में हर कोई अपनी बेटी के लिए, अपनी बहन के लिए व अपनी पत्नी की सुरक्षा के लिए चिंतित है। उसके वर ढूंढने के लिए, उसके लिए दहेज जुटाने के लिए। लिंग के आधार पर स्त्री और पुरुष में भेदभाव करना यानि सामाजिक लिंग भेद की विचारधारा इसका मुख्य कारण है। स्त्रियों को समानता, आजादी और सुरक्षा का अर्थ है पुरुषों की तनाव से मुक्ति। स्त्री और पुरुष में ऊपरी तौर पर जो भिन्नता दिखाई देती है उसके आधार पर स्त्री व पुरुष की क्षमताओं में, प्रतिभा में स्वाभाविक तौर पर अन्तर मान लेते हैं जो सही नहीं है। महिला और पुरुष में जो जैवकीय भिन्नता है, शारीरिक भिन्नता है वह प्राकृतिक है, जिस पर मनुष्य का कोई वश नहीं है लेकिन जो सामाजिक भिन्नता है वह प्राकृतिक नहीं बल्कि समाज निर्मित है और पितृसत्ता की व्यवस्था के कारण है। इस व्यवस्था में पिता या कोई पुरुष, परिवार के सभी सदस्यों, संपत्ति व अन्य आर्थिक साधनों पर नियंत्रण रखता है। वही मुखिया माना जाता है। उसी के नाम पर वंश या खानदान चलता है। **पितृसत्ता या पुरुष-प्रधान व्यवस्था में पुरुष का दर्जा औरत से ऊंचा है।** वह औरत का स्वामी है। औरत से अपेक्षा की जाती है कि वह पुरुष के नियंत्रण में रहे। स्त्री को पति की सेवा करने का, पति का वंश चलाने के लिए पुत्रों को जन्म देने वाला साधन माना जाता है। समर्पण, त्याग व सहनशीलता स्त्री का सबसे बड़ा गुण माना जाता है। 'पति परमेश्वर' की सेवा उसके जीवन का मार्गदर्शक-मूल्य। इस व्यवस्था के कारण औरत के अधिकार और कर्तव्यों तथा पुरुष के अधिकार और कर्तव्यों में अन्तर आ जाता है। औरत के हिस्से में कर्तव्य अधिक आते हैं और अधिकार कम। तो पुरुष के पास अधिकार अधिक आते हैं और कर्तव्य कम। यह व्यवस्था लड़का और लड़की में भेदभाव करती है। यह सामाजिक भेदभाव औरत व पुरुष के रहन-सहन के ढंग में अलग-अलग आचार संहिता बनाती है। इसके कारण माता-पिता अपने ही बच्चों में भेद करने लगते हैं। जबकि यह किसी के वश में नहीं होता और न ही किसी से पूछा जाता कि वह लड़का बनेगा या लड़की। समाज में लड़का और लड़की में भेदभाव स्पष्ट नजर आते हैं। उन पर एक नजर डालना उचित रहेगा।

कन्या भ्रूण-हत्या

पुत्र की प्राप्ति के लिए परिवार तरसते हैं। यहां-वहां मन्नत मांगते हैं। औरतें व्रत, उपवास करती हैं। दवाएं लेती हैं। स्त्री को 'पुत्रवती भव' का आशीर्वाद दिया जाता है। 'पुत्रीवती भव' का नहीं। प्राचीन साहित्य में देवियां मिल जाएंगी, माताएं मिल जाएंगी, पत्नियां मिल जाएंगी, रानियां मिल जाएंगी, गणिकाएं-सेविकाएं मिल जाएंगी, वेश्याएं-विषकन्याएं मिल जाएंगी, लेकिन शायद ही किसी ग्रन्थ में बेटी के पैदा होने का और उसके लाड़ लड़ाने का जिक्र हो, इसके विपरीत पुत्र प्राप्त करने की इच्छा पूरा करने के लिए यज्ञ करवाने व दान देने के ढेरों उदाहरण-वर्णन मिल जायेंगे। पुत्र-लालसा प्राचीन-ग्रंथों में भी भरी पड़ी है।

आम तौर पर देखा गया है कि यदि किसी के यहां पहला बच्चा लड़का हो तो दूसरे बच्चे का लिंग-परीक्षण नहीं करवाते। यदि किसी के यहां पहला बच्चा लड़की हो तो दूसरे बच्चे का लिंग-परीक्षण करवाया जाता है और यदि पुनः कन्या भ्रूण हो तो उसको खत्म कर दिया जाता है। इसे कोई हत्या नहीं मानता। समाज व परिवार के सभी 'इज्जतदार' लोग इस कुकर्म में शामिल होते हैं। **शिक्षित, सम्पन्न व कथित ऊंची जातियों में कन्या भ्रूण-हत्या प्रवृत्ति ज्यादा है।** यह भी गौर करने की बात है कि सम्पन्न कहे जाने वाले राज्यों में कन्या-भ्रूण हत्या तुलनात्मक दृष्टि से अधिक है। हरियाणा और पंजाब की गिनती भारत के अपेक्षाकृत सम्पन्न राज्यों में होती है। इन दोनों में स्त्री-पुरुष अनुपात असंतुलित है। 1991 की जनगणना में अखिल भारतीय स्तर पर 1000 पुरुषों के मुकाबले 927 महिलाएं थी और 2001 की जनगणना के अनुसार 1000 पुरुषों के मुकाबले 933 महिलाएं। चिंताजनक बात है कि हरियाणा व पंजाब में 1991 में 1000 पुरुषों के मुकाबले 865 व 882 महिलाएं थी। 2001 की जनगणना में यह संख्या घटकर 861 व 874 रह गई।[1]

कुछ लोगों का ऐसा मानना रहा है कि 'महिलाओं की संख्या कम होने व उनकी मांग अधिक होने से उनका समाज में सम्मान बढ़ेगा'। वे अर्थशास्त्र का 'मांग और पूर्ति' का सिद्धांत यहां लागू करते हैं। वास्तव में यह मानना सही नहीं है। बाजार में भी जिस वस्तु की मांग व पूर्ति का संतुलन गड़बड़ाता है तो उस पर दबाव बढ़ता है। ठीक इसी तरह महिलाओं पर भी हिंसा, छेड़छाड़ व बलात्कार की घटनाएं बढ़ रही हैं। इस असंतुलन से महिलाओं के प्रति अपराधों की संख्या बढ़ रही है। पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों की संख्या घटने से स्त्रियों के

खरीद-फरोख्त का व्यापार बढ़ा है। स्त्रियों के शोषण-उत्पीड़न व उनके प्रति हिंसा के नए-नए रूप सामने आए हैं।

लड़के के पैदा होने पर परिवार में खुशियां मनाई जाती हैं, बधाई गाई जाती है लेकिन लड़की के पैदा होने पर कोई खुशी नहीं मनाई जाती बल्कि लड़के के जन्म पर थाली बजाकर खुशी मनाने व लड़की के जन्म पर ठीकरा फोड़कर मातम मनाने का तथा लड़के के जन्म पर छटी मनाने व लड़की के जन्म पर छटी नहीं मनाने का रिवाज है। लड़की के जन्म पर कोई प्रीति-भोज, दसूठन या कोई ऐसा आयोजन नहीं किया जाता, जिससे कि खुशी प्रकट हो। कई बार तो लड़की का पैदा होना अपशकुन ही माना जाता है। लड़की के पैदा होने पर 'हिजड़े' भी ढोल बजाने नहीं आते। यदि किसी औरत के लगातार दो या तीन लड़कियां पैदा हो जाएं तो उसको प्रताड़ना सहन करनी पड़ती है। चूंकि पुरुष प्रधान विचारधारा के अनुसार सोचा जाता है इसलिए कई बेटियों को जन्म देने वाली मां के मन में भी अपराध-बोध पैदा हो जाता है। परिवार की ओर से लड़की पैदा करने वाली जच्चा व लड़का पैदा करने वाली जच्चा की खुराक व सेवा-सुश्रूषा में अन्तर किया जाता रहा है। जिसमें लड़की पैदा करने वाली स्त्री को दण्ड के रूप में कम खुराक दी जाती है। जबकि महिला का लड़का या लड़की होने में कोई कसूर नहीं होता।[2] यह बात मेडीकल सांईस ने अच्छी तरह से बता दी है कि बच्चे का लड़का या लड़की होना पुरुष पर निर्भर करता है कई बार ऐसी औरतों को उनके पति छोड़ भी देते हैं। इस स्थिति में पुरुष दूसरी शादी भी कर लेते हैं।

कई बहनों की परिवार में भी उपेक्षा की जाती है। मां-बाप भी उनको बोझ मानने लगते हैं। इस कारण वे अपनी बेटियों को पूरा प्यार नहीं दे पाते। कई बेटियों के पिता को समाज में 'बेचारा' समझा जाता है। उसके वंश के समाप्त होने का रोना रोया जाता है। ऐसी मान्यता है कि केवल बेटों से ही वंश चलता है। बेटे को पिता के दाह-कर्म करने का अधिकार दिया गया है। इस मान्यता के चलते ही कोई व्यक्ति पुत्र प्राप्त करने की इच्छा करता है। शास्त्रों में मुक्ति उसी पुरुष की मानी गई है, जो तीन ऋणों को चुका देगा। वे तीन ऋण हैं- पितृ ऋण, देव ऋण, गुरु ऋण। पितृ ऋण तभी चुकाया जा सकता है जब कि पुरुष कम से कम एक पुत्र अवश्य पैदा करे। यदि वह ऐसा करने में समर्थ नहीं है तो उसकी मुक्ति संभव नहीं है। अतः 'मोक्ष' प्राप्ति के लिए वह तरह-तरह के उपाय करता है। इस विचारधारा के कारण ही मनुष्य अपनी संतान

में (लड़का-लड़की) भेदभाव बरतता है। लड़के को लड़की के मुकाबले ज्यादा महत्त्व देता है और उसकी इस विचारधारा के कारण बेटी उपेक्षा का शिकार हो जाती है। बेटे को परिवार की विरासत का वाहक माना जाता है। आमतौर पर ऐसा कहा जाता है कि 'बच्चे को बाप-दादा की 'विरासत' मिली है'। मां-दादी की नहीं। जबकि बच्चे का पालन-पोषण मां-दादी ही अधिक करती हैं। बाप का बच्चे के पालन में कम योगदान होता है।

समाजीकरण

लड़की को 'लड़की' होने का 'बोध' तथा लड़के को अपने 'लड़के' होने का 'बोध' बचपन से ही विभिन्न तरीकों के माध्यम से करवाया जाता है। लड़के व लड़की के अलग होने के अहसास के लिए उनके कपड़ों में अन्तर किया जाता है। लड़का पेंट-शर्ट पहनेगा, बाल छोटे रखेगा। लड़की फ्राक पहनेगी, लम्बे बाल रखेगी, चोटी बनायेगी। खेलों के स्वरूप में अन्तर किया जाता है। उनके लिए भावी जीवन में जो भूमिकाएं तय की गई हैं उसके अनुसार ही उनके खेल भी निर्धारित किए गए हैं। लड़का ताकत के खेल खेलेगा तो लड़की गुड्डा-गुड्डी के खेल। मानकर चला जाता है कि लड़के को बाहर के काम करने हैं इसलिए ऐसे खेल उसके लिए जरूरी हैं। लड़की को बच्चों का पालन करना है, घर की व्यवस्था करनी है, इसलिए उसके लिए गुड्डी-गुड्डे का खेल आदर्श खेल है। यह मान्यता एक तरफ तो स्त्री के विकास की संभावनाओं को समाप्त करती है, दूसरी तरफ पुरुष के व्यक्तित्व को भी एकपक्षीय रखती है। क्या बच्चों को ऐसे अच्छे बाप की जरूरत नहीं है जो अपने बच्चों के लाड़ लड़ा सके? यदि कोई लड़का अपने बचपन में लड़कियों के लिए निर्धारित किए गए खेल खेलता है तो वह भविष्य में कुशल बाप जरूर बनेगा जिसका लाभ बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण होगा। दूसरी तरफ यदि लड़कियां लड़कों वाले खेल खेलें तो उनके व्यक्तित्व में जो आत्मविश्वास पनपेगा उसका न केवल परिवार को बल्कि पूरे समाज को बहुत लाभ होगा।

'लड़का बलशाली होता है और लड़की कमजोर' ऐसा अहसास पैदा करने के लिए ही लड़के को मजबूत, बहादुर, कमाऊ, कभी न रोने वाला, वंश का चिराग कहा जाता है तो औरत को नाजुक, कमजोर, अबला, सहनशील, त्यागमयी, गृहिणी, पुरुषों पर आश्रित व उसके नियंत्रण में रहने वाली। प्राकृतिक दृष्टि से महिलाएं किसी भी रूप में पुरुषों से कमजोर नहीं होती। न ही उनके

प्राकृतिक गुण अलग-अलग होते हैं। प्रजनन अंगों को छोड़कर किसी तरह का शारीरिक अन्तर नहीं हैं। समाज में दोनों को विकास के समान अवसर नहीं मिलते जिस कारण दोनों की क्षमताओं में अन्तर आ जाता है। ताकत या कमजोरी कोई सामुदायिक, नस्ली, इलाकाई या फिर लैंगिक गुण नहीं है। यह निहायत व्यक्तिगत गुण है। एक पुरुष एक स्त्री से ताकतवर हो सकता है तो उसी समय दूसरी स्त्री उससे अधिक ताकतवर हो सकती है। ताकत और कमजोरी की कोई सार्वभौमिक-सार्वकालिक निश्चित अवधारणा नहीं है, बल्कि यह सापेक्ष व तुलनात्मक होती है।

स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता। किसी पुरुष के साथ ही उसकी पहचान की जाती है। इसलिए उसका परिचय किसी की मां, बहन, पत्नी व बेटी के रूप में ही दिया जाता है। स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व व पहचान को समाप्त करने के लिए ही बचपन में पिता का, जवानी में पति का और बुढ़ापे में बेटे के संरक्षण में रहने की व्यवस्था की गई। इसी कारण यौन-शुचिता की अवधारणा विकसित हुई। बेटी को 'पराया धन' व किसी की 'अमानत' समझा गया, जिसे पिता को उसके पति को उसकी रक्षा करनी है और समय आने पर उसके पति सौंपना है। बेटी का विवाह करना पिता का सबसे बड़ा कर्तव्य माना और 'कन्यादान' को सबसे बड़ा दान। 'अकेली' स्त्री को पुरुष-प्रधान समाज के लिए सबसे बड़ा खतरा माना। इसलिए लोग शारीरिक-मानसिक रोगी यहां तक कि पागल लड़की तक की भी शादी कर देते हैं। कहा जाता है कि 'रांड तो सांड' हो जाती हैं इसलिए उसको नकेल डालने के लिए एक पुरुष जरूर चाहिए। इसलिए विधवा होने पर स्त्री की इच्छा के खिलाफ उसकी शादी (लत्ता डालना) उसके देवर से कर दी जाती है। 'सती' होने के पीछे भी यही वैचारिक आधार रहा है। यद्यपि इसके मूल में सम्पत्ति हथियाने की लालसा भी रही है। पत्नी को 'अर्धांगिनी' कहा जाता है यानी कि पुरुष का आधा अंग। जब स्त्री स्वयं पूर्ण इकाई नहीं है और वह पति का आधा अंग है तो आधा अंग जलने के कारण उसकी 'मुक्ति' नहीं हो सकती। इस मान्यता के कारण ही पत्नी को बिना मौत के ही मरना पड़ता था और बिना मरे ही जलना पड़ता था उसकी करूण पुकार न सुनाई दे, इसलिए उत्सव का माहौल बनाया जाता रहा। पति के साथ ही स्त्री का जीवन, भाग्य व भविष्य जुड़ा है इसलिए उसे 'दीर्घायु', 'चिरजीव हो' का आशीर्वाद नहीं दिया जाता बल्कि 'सौभाग्यवती भव' का आशीर्वाद दिया जाता है। उसे सदा सुहागिन रहने

का आशीर्वाद दिया जाता है और सुहागिन का परम कर्तव्य है कि वह अपने तन-मन से पति की 'सेवा' करे। उसकी इच्छाओं का ख्याल रखे। पति की संतुष्टि करना व सेवा ही उसके जीवन का लक्ष्य है, उसकी मुक्ति का मार्ग है। पति ही उसका परमेश्वर है उसी की पूजा उसका 'धर्म' है। पति चाहे कितना ही क्रूर, निर्दयी व अत्याचारी क्यों न हो उसकी आज्ञा पालन की उसके व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण माना गया है। चूंकि पति से अलग स्त्री की पहचान नहीं की गई, इसलिए शादी के बाद उसे पति का नाम ही धारण करना पड़ता है। माता-पिता का दिया नाम भी कई बार इसलिए बदल दिया जाता है कि ससुराल में पहले से किसी व्यक्ति का यह नाम है। उसका 'सरनेम' तो बदल ही जाता है। इसलिए यदि दो विवाहित बहनें यदि किसी क्षेत्र में नाम कमा रही हों तो लोग उनको नाम से नहीं पहचान सकते कि वे दो बहनें हैं। प्रसिद्ध गायिका लता मंगेशकर और आशा भोंसले को कोई नाम से दो बहनों के रूप में नहीं पहचान सकता। स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं है और उसका भाग्य पुरुषों के साथ ही बंधा है। इसलिए अपने पति व बेटों के स्वास्थ्य व लम्बी उम्र की कामना के लिए स्त्री करवा-चौथ व अन्य कई व्रत रखती है। जबकि पुरुष स्त्री के लिए इस तरह के कोई व्रत नहीं रखता।

औरत शादी के बाद सिंदुर, बिंदी, मंगलसूत्र, नाक में कांटा/कोका आदि सुहाग चिन्ह धारण करती है। उसके नाम के आगे मिस या मिसेस, कुमारी या श्रीमती जैसे विशेषण लगाकर उसकी वैवाहिक स्थिति को स्पष्ट किया जाता है। विवाह के समय लड़की पसंद करते समय निडरता, स्वतंत्र सोच, परिपक्वता, आत्मविश्वास आदि को उसके व्यक्तित्व का गुण नहीं माना जाता। उसका 'रूप-सौंदर्य' व 'लज्जा', 'आज्ञाकारिता', 'सेवाभाव' को ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। विवाह के पहले की उसकी उपलब्धियों को सराहा जाता है, लेकिन विवाह के बाद घरेलू कामकाज में निपुणता, आज्ञाकारिता और लज्जा ही उसके गुण माने जाते हैं। 'लज्जा' की विवाहित स्त्री के सर्वाधिक मूल्यवान गुणों में गिनती की गई है। स्त्री की लज्जा को बड़ों के प्रति सम्मान प्रदर्शित के साथ जोड़ा गया इस कारण उसके लिए पर्दे में, घर की दहलीज के अन्दर रहना आदर्श माना गया। स्त्री की लज्जा को, पर्दे को घर-परिवार की इज्जत के साथ जोड़ा गया। स्त्री का बड़ों के सामने न बोलना ही उचित माना गया। पर्दे की प्रथा ने उसकी भावनाओं की व अधिकारों की अभिव्यक्ति पर ही रोक लगा दी। पर्दा स्त्री के विकास में बाधा बन गया।

लड़का-लड़की की शादी तय करते समय लड़के की नजर से लड़की को देखा जाता है। उसका कद-काठी, शिक्षा, कमाई हर लिहाज से वह लड़के से कमतर होनी चाहिए। ताकि लड़के का उस पर रौब-धौंस चल सके। यदि किसी व्यक्ति की पत्नी उससे अधिक ताकतवर हो, उससे अधिक शिक्षित हो, उससे ऊंचे ओहदे पर हो, उससे अधिक धन कमाती हो तो पितृसत्ता की विचारधारा के कारण पति व पत्नी दोनों के अहंभाव को ठेस लगती है। पत्नी हर मामले में पति से कम हो उसे ही 'आदर्श जोड़ी' कहा जाता है। विवाह में व विवाह के बाद लड़के के संबंधियों को सारे अधिकार प्राप्त हैं। लड़की के संबंधियों को सारे कर्तव्य करने हैं। लड़के के संबंधियों को ऊंचा दर्जा प्राप्त है और लड़की के संबंधियों को नीचा। लड़की के बाप की हाथ जोड़कर गर्दन झुकाकर बात करने की मुद्रा को ही आदर्श समझा जाता है। लड़की का बाप होना स्वत: ही निम्न होना माना गया है। बाप की यह स्थिति लड़की की समाज में स्थिति को ही दर्शाती है।

स्त्री के लिए अच्छी मां व अच्छी पत्नी बनने के लिए बहुत से आदर्श बनाए गए हैं। लेकिन पुरुष के लिए अच्छा पिता व अच्छा पति बनने के लिए कोई सामाजिक आदर्श नहीं गढ़ा गया। आमतौर पर स्त्री के 'मातृत्व' को ही महिमामंडित किया जाता है। मां बनने पर ही स्त्री को संपूर्ण स्त्री माना जाता है। लेकिन यह भी सही है कि इस मामले में भी वह स्वतंत्र नहीं है। वह अपनी इच्छा से ही किसी बच्चे को जन्म नहीं दे सकती। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो बात यह है कि उसका अपने शरीर पर और विशेष तौर पर अपनी कोख पर भी उसका अपना अधिकार नहीं है। उसके शरीर पर उसका उतना ही अधिकार है जितना कि पुरुष-प्रधान समाज उसको इजाजत देता है। वह यदि मां बनना चाहे तो उसके लिए भी स्वतंत्र नहीं है। और यदि वह अपनी इच्छा से मां न बनना चाहे तो इसका भी उसको कोई अधिकार नहीं है। उसका मातृत्व भी उसके पतिव्रतत्व के साथ ही स्वीकार्य है। विवाह की जरूरत भी समाज में तभी पड़ी जबकि पुरुष को अपनी निजी सम्पत्ति के वारिस की जरूरत महसूस हुई। वंशावली पहले मां की तरफ से चलती थी क्योंकि आदिम व्यवस्था में पिता की पहचान नहीं थी। इसकी पहचान हो सके कि स्त्री से उत्पन्न संतान किस पुरुष के सम्पर्क से पैदा हुई है इसलिए स्त्री-पुरुष जोड़ी-विवाह की व्यवस्था पुरुष ने बनाई। इस व्यवस्था से स्त्री हमेशा के लिए पुरुष की निजी सम्पत्ति का वारिस पैदा करने वाली व उसका ख्याल रखने वाली की स्थिति में आ गई।

दहेज

दहेज समाज के लिए एक अभिशाप है। जो स्त्रियों की समस्याओं में बढ़ोतरी करता है। कन्या-भ्रूण हत्या भी सीधे तौर पर दहेज से जुड़ी है। जिन क्षेत्रों, समुदायों, जातियों, वर्गों, में दहेज का प्रचलन अधिक है उनमें कन्या-भ्रूण हत्या की प्रवृत्ति भी अधिक है। चूंकि शादी के बाद लड़की को अपने मां-बाप का घर छोड़कर जाना होता है, इसलिए उसे परिवार के लिए लाभदायक नहीं माना जाता। उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए मां-बाप अधिक खर्च करना मूर्खता समझते हैं। दहेज का प्रचलन स्त्रियों के विकास को अवरूद्ध करता है। मां-बाप लड़की को इसलिए उच्च शिक्षा नहीं दिलवाते कि उच्च शिक्षा पाने के बाद उसके लिए वर भी उच्च शिक्षित ही ढूंढना पड़ेगा। इस 'उच्च-शिक्षित दूल्हे' की कीमत विवाह के बाजार में काफी अधिक है। लड़की के मां-बाप की उसे 'खरीदने' की क्षमता नहीं होती। इसलिए वे लड़की की पढ़ाई ही बन्द करवा देते हैं। वे सोचते हैं कि लड़की की शिक्षा पर किया जाने वाले खर्च को उसकी शादी के समय दिए जाने वाले दहेज के लिए बचाकर रखने में ज्यादा बुद्धिमता है।

विवाह के समय कन्यापक्ष की ओर से दिए जाने वाले उपहारों को दहेज कहा जाता है। दहेज अब मात्र 'उपहार' नहीं है, बल्कि विवाह के समय सौदेबाजी की चीज बन गई है। कुछ वर्गों में विवाह तय करते समय दहेज मुख्य कारक बनता जा रहा है। दहेज को 'प्रतिष्ठा' के साथ जोड़ दिया गया है इसलिए अक्सर लोग दहेज पर अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करते हैं। कर्ज लेना या अपनी सम्पत्ति बेचकर दहेज देना तो आम बात है। उस दुल्हन को ससुराल में अधिक 'सम्मान' मिलता है, जो अधिक दहेज लाती है। ससुराल में उसकी हैसियत को उसे द्वारा लाया गया दहेज तय करता है। इसलिए अब लड़की स्वयं भी दहेज की 'जिद्द' करने लगी है। जो लड़की दहेज कम लेकर आती है या ससुराल की अपेक्षा के अनुरूप नहीं लेकर आती तो उसको आदर तो मिलता ही नहीं, बल्कि प्रताड़ना व अपमान भी मिलता है। दहेज मांगने के पीछे इस अपमान से बचने व आदर पाने का भाव ही काम करता है। यह कहकर इससे निजात नहीं पाई जा सकती कि 'स्वयं लड़कियां ही दहेज मांगती हैं, तो कोई क्या करे?'

यह कहना-सोचना भी उचित नहीं है कि दहेज भरपाई करने का तरीका है। यदि लड़की को पिता की सम्पत्ति में हिस्सा मिलता है तो वह अधिक स्वावलम्बी होती है। इसके विपरीत दहेज के प्रचलन से उसकी आत्मनिर्भरता घटती है। जब उसकी शादी तय करने की प्रक्रिया शुरू होती है और दहेज के कारण कोई उपयुक्त वर नहीं मिलता तो उसकी दोषी भी लड़की ही मानी जाती है। बार-बार उसको इस स्थिति से गुजरना पड़ता है। घर-परिवार के इस माहौल में वह स्वयं को असहज तो महसूस करती ही है। वह अन्तर्मुखी हो जाती है जो उसके स्वास्थ्य व खुशी के लिए घातक सिद्ध होता है।

पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को आर्थिक इकाई नहीं मानता, इसलिए उसका मूल्य पुरुष के मुकाबले में कम आंकता है। इस कमी की पूर्ति दहेज से करते हैं। दहेज को उचित ठहराने के लिए स्त्री को अनुत्पादक मानना सही नहीं है। स्त्री घर पर सारा दिन मेहनत करती है। उसका मूल्य पैसे में नहीं आंका जाता। स्त्री अवैतनिक नौकर की तरह है। जो स्त्रियां सीधे तौर पर आर्थिक गतिविधियों में शामिल हैं वहां भी दहेज का अत्यधिक प्रचलन है।

'हर पुरुष की सफलता के पीछे स्त्री होती है' यह धारणा लोकप्रिय है। वह 'पीछे' ही रहे। यही उसके लिए आदर्श स्थिति है। जो भी स्त्री आगे बढ़ी है। वह परिवार से संघर्ष करके ही संभव हो सका है। पति के विकास के लिए पत्नी कष्ट उठाकर, बलिदान देकर, असुविधा सहन करके सहायता करती है। स्त्री के विकास के लिए पति असुविधा व कष्ट उठाकर अनुकूल वातावरण प्रदान नहीं कराता। पर्वतारोही संतोष यादव का अनुभव है कि इतना संघर्ष उसे पर्वत पर चढ़ने में नहीं करना पड़ा। जितना कि घरवालों को इस बात के लिए राजी करने में।

महिला-श्रम

पुरुष घर का मुखिया है। वह कमाता है। इसलिए उसके पास विशेषाधिकार हैं। घर की सारी सुविधाएं वह पहले भोक्ता है। बची-खुची औरतें प्रयोग करती हैं। खाना पहले पति व पुरुष भोक्ता है। बची-खुची औरतें प्रयोग करती हैं। खाना पहले पति व पुरुष खाते हैं, फिर स्त्रियां। कई बार दाल-सब्जी समाप्त हो जाती है तो बिना सब्जी के या फिर जूठन खाती हैं। मान्यता रही है कि 'स्त्री द्वारा दूध के बर्तन की धोहन पीने से परिवार में बरकत होती है',

'लड़की दूध पीयेगी और मलाई खाायेगी तो उसके मूछें उग आयेंगी' ऐसी कहावत का प्रचलन स्त्री व पुरुष में भेदभाव व पुरुष के मुकाबले स्त्री के दोयम दर्जे को ही दर्शाता है।

'पुरुष कमाये और स्त्री घर चलाये' की मान्यता ऊपरी तौर पर उचित लगती है लेकिन यह कतई न्यायसंगत नहीं है। समाज में धन की सत्ता है। स्त्री के पास वह नहीं है। घर के काम ही उसका लक्ष्य हो तो उसकी शिक्षा भी जरूरत नहीं रहती। उसको सर्वांगीण विकास के अवसर नहीं मिलते। उसके मिल्कियत व विरासत के अधिकार छिन जाते हैं। उसकी बौद्धिक शक्ति व तर्कशक्ति का पूर्ण विकास नहीं होता। वह पुरुष पर ही निर्भर हो जाती है। वह घर पर ही कैदी की तरह हो जाती है। सार्वजनिक स्थलों पंचायत घरों, स्कूलों आदि में उसके जाने की मनाही की धारणा उसके विकास को रोकती है। थाना-कचहरी व तहसील आदि न्याय प्राप्त करने की जगह भी उसका जाना असंगत माना जाता है। जिस कारण वह न्याय प्राप्त करने से भी वंचित रह जाती है।

नौकरी करने वाली विवाहित स्त्री को नौकरी के बाद घर का काम, पति व बच्चों की देखभाल तथा सामाजिक संबंधों की जिम्मेवारी निभानी पड़ती है। उसका काम तीन गुना बढ़ जाता है। पुरुष घर के काम में हाथ नहीं बंटाता। यदि वह ऐसा करता भी है तो यह सोचकर कि वह उदार है। इसलिए नहीं कि पति व पत्नी दोनों का घर है और काम करना दोनों की जिम्मेवारी है। चूंकि पुरुष दयालु भाव से काम करता है इसलिए वह अपने पसंद के कामों में ही हाथ बंटाता है। स्त्री के सामने पसंद-नापसंद का कोई अर्थ नहीं। उसे तो सारे काम करने ही पड़ते हैं। स्त्री बाहर काम करे इसको तो समाज में फिर भी मान्यता मिल रही है, लेकिन पुरुष घर में काम करे इसको अभी स्वीकृति नहीं मिली है। जो व्यक्ति ऐसा करता है समाज उसे 'जोरू का गुलाम' कहकर प्रताड़ित करता है।

पुरुष उन कामों को नहीं करता, जिन्हें वह हीन मानता है। यह भी कहा जा सकता है कि स्त्री द्वारा किए जाने वाले कामों को हीन माना जाता है। खाना बनाना, कपड़े धोना, झाड़ू लगाना, बर्तन साफ करना आदि कामों को पुरुष हीन मानता है। यदि वह ये काम करे भी तो समाज से शर्माता है। आस-पड़ोस के लोग भी उसको टोकते हैं। घर में मेहमान भी आ जाएं तो पुरुष उनकी आवभगत में शायद ही मदद करता है। सारे शिष्टाचार निभाने की जिम्मेवारी स्त्री की ही है। गृहिणियों की मेहनत की कोई गिनती नहीं होती। अपनी मेहनत की कीमत को वे स्वयं भी नहीं पहचानतीं, इसीलिए तो वे सारा दिन काम करने

के बाद भी कहती हैं कि वे 'कुछ' नहीं करती। घर रहती हैं। यद्यपि स्त्री पुरुष के बराबर और कई बार पुरुष से अधिक काम करती हैं। लेकिन उनको पुरुषों के मुकाबले कम मजदूरी दी जाती है। वे असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं। जहां उनकी मोल-भाव करने की क्षमता नहीं होती। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट में रेखांकित किया गया है कि संसार के कुल काम का 75 प्रतिशत भाग महिलाएं करती हैं। लेकिन संसार की कुल आय का केवल दस प्रतिशत भाग ही उनके हिस्से में आता है और संसार की कुल संपत्ति का एक प्रतिशत से भी कम महिलाओं के पास है।

स्त्रियां सभी काम कर सकती हैं बड़े से बड़ा व सूक्ष्म से सूक्ष्म। शारीरिक मेहनत का भी और दिमागी भी, बहादुरी व साहस का भी। उनकी क्षमताओं पर संदेह करना भी पुरुष-प्रधान मानसिकता का ही परिचायक है। जहां-जहां भी स्त्री को अपनी प्रतिभा का विकास करने और उसे व्यक्त करने के अवसर मिले हैं वहां-वहां उन्होंने पुरुषों से आगे बढ़कर भी दिखाया है। इन्दिरा गांधी, कल्पना चावला, किरण बेदी, मल्लेश्वरी कोई अपवाद नहीं है बल्कि अपनी मेहनत व लगन से स्त्रियां हर क्षेत्र में व हर स्तर पर ज्यादा कुशल व अव्वल आ रही हैं। पढ़ाई व ज्ञान के क्षेत्र में पहले दस में लड़कियों की संख्या अधिक है। वे विमान चालक हैं। ड्राईवर हैं। राजनीतिज्ञ, इंजीनियर, पत्रकार, चिंतक, अध्यापक हैं। सभी क्षेत्रों व पेशों में हैं। वे किसी क्षेत्र में पुरुष से पीछे नहीं हैं।

स्त्री को परिवार में कलह की जड़ मानना व परिवार को तोड़ने वाली कहना गलत तो है ही साथ ही परिवार के स्वरूप में आ रहे बदलाव को नकारना व समस्या को पूरे परिप्रेक्ष्य में न समझना है। परिवार में झगड़े तो होते हैं पुरुषों के ओर उनसे जुड़ी सम्पत्ति के। लेकिन उनके लिए आमतौर पर जिम्मेवार ठहराया जाता है स्त्रियों को। चूंकि विवाह से पहले परिवार का स्वरूप नहीं बनता इसलिए झगड़े भी नहीं होते। ज्यों ही विवाह होता है तो व्यक्ति को अपने परिवार, अपने वंश की चिंता सताने लगती है और संयुक्त परिवार में वह अपने भविष्य को उज्जवल नहीं देखता तो वह परिवार से अलग होने की सोचता है। यह भी सच है कि संयुक्त परिवार में नव-विवाहित जोड़े को जरूरी स्वतंत्रता भी नहीं मिलती। परिवार से अलग होने को न तो स्वाभाविक माना जाता है और न ही अच्छा। इसलिए झगड़ा होता है। झगड़े का आरोप स्त्री पर आसानी से लगा दिया जाता है कि उसके आने से पहले तो परिवार में शांति

थी, लेकिन उसके आने से ही कलह बढ़ा है। इससे समस्या का एक सरल-सा कारण निकाल लिया जाता है। पुरुष तो इससे बच जाता है और सारा दोष स्त्री पर मढ दिया जाता है। संयुक्त-परिवारों में व्यक्तिगत आजादी की संभावना कम होती है, जो कि पुरुष भी चाहता है औरत भी। उसे प्राप्त करने के लिए वे परिवार से अलग होने की सोचते हैं। यह निर्णय दोनों का ही होता है, लेकिन इसका दोष केवल स्त्री पर ही रखा जाता है।

'औरत ही औरत की दुश्मन होती है' यह कहना सही नहीं है। कहा जाता है कि स्त्री ही कन्या-भ्रूण-हत्या करवाती है। स्त्री ही दहेज के लिए स्त्री को जलाती है। वही औरत के लिए सारी समस्याएं पैदा करती है। ऐसा कहकर न केवल समस्या से पीछा छुड़ा लिया जाता है, बल्कि समस्या की जिम्मेवारी भी उसी पर डाल दी जाती है, जो उत्पीड़ित होती है। यह उसी तरह की चालाकी है जैसे कि अक्सर शासक वर्ग करते हैं। वे सारी समस्याओं का जिम्मेवार उन्हीं को ठहराते हैं, जो कि उस समस्या को भुगतते हैं। वे सारी समस्याओं का कारण जनता को ही ठहराते हैं, उसी तरह का रवैया यहां भी नजर आता है। यहां सवाल औरत और पुरुष का नहीं है, बल्कि विचारधारा का है। चाहे पुरुष हो या स्त्री यदि उसने पुरुष-प्रधान विचारधारा को धारण कर रखा है तो उसका व्यवहार भी उसी से ही परिचालित है। परिवार में सामान्यतः पुरुष-प्रधान विचारधारा का ही पालन होता है, उसी के अनुसार सोचा जाता है। स्त्रियां भी परिवारों में ही अपने विचार ग्रहण करती हैं, इसलिए अक्सर वे भी पुरुष-प्रधान विचारधारा के अनुसार ही सोचती हैं। वे कई बार उन्हीं बातों व मूल्यों को सही मानती हैं जो कि स्त्री-मुक्ति में बाधक हैं। इस आधार पर स्त्री को स्त्री की दुश्मन नहीं कहा जाता। यूं देखें तो राजस्थान में रूपकंवर के सती होने का काफी स्त्रियों ने न केवल समर्थन किया था, बल्कि इसको उचित भी ठहराया था। सवाल पुरुषवाद का नहीं बल्कि पुरुष-प्रधान विचारधारा का है। परिवार में स्त्री के माध्यम से ही विचारधारा लागू होती है। वही अपनी बेटी को बाहर जाने से रोकती है, वही अन्य कार्यवाही करती है। इसलिए ऊपरी तौर पर ऐसा दिखाई देता है, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। उसकी भूमिका निर्णयकारी नहीं होती, वह केवल उनको लागू करती है।

समानता का अर्थ प्रतियोगिता या स्पर्धा नहीं है। स्त्रियों को आजादी का मतलब पुरुष के खिलाफ बगावत नहीं है। पुरुष को स्त्री के मुकाबले श्रेष्ठ न मानना या स्त्री को दोयम न मानकर बराबर स्वीकार करना है। राजा राममोहन

राय भी पुरुष ही थे, जिन्होंने सती-प्रथा के खिलाफ आवाज़ उठाई थी। जोतिबा फूले भी पुरुष ही थे जिन्होंने स्त्री-शिक्षा के लिए न सिर्फ वकालत की थी, बल्कि संघर्ष भी किया था। डॉ.भीमराव आम्बेडकर भी एक पुरुष ही थे जिन्होंने स्त्री कर्मचारियों के लिए प्रसूति-अवकाश के प्रावधान किए तथा सम्पत्ति में स्त्री को अधिकार दिलाने के लिए 'हिन्दू कोड बिल' तैयार किया था। पुरुष के आधिपत्य को न मानने का अर्थ -- पुरुष के साथ से इनकार नहीं है। स्त्री का पुरुष के लिए और पुरुष का स्त्री के लिए साथ सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन में प्रेम व आनंद का संचार है। यह समानता की नींव पर ही संभव है। समानता का अर्थ इतना ही है कि स्त्री को कानूनी, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक मामलों में पुरुष के बराबर अधिकार हो। उसे पुरुष की 'सेविका' के रूप में देखने की बजाए 'कर्ता' के रूप में उसकी पहचान करना है। अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए पुरुष को जितने अवसर मिलते हैं, उतने अवसर स्त्रियों को भी मिलें। श्रम व संपत्ति में स्त्रियों का समान हिस्सा हो। इसी से स्त्रियों की श्रम-शक्ति का समाज व राष्ट्र को लाभ मिलेगा। आधी आबादी के विकास के बिना कोई समाज तरक्की नहीं कर सकता। यदि स्त्री मुक्त नहीं होगी तो पुरुष भी सुखी नहीं हो सकता।

महिला-स्वास्थ्य

महिलाओं के खराब स्वास्थ्य का कारण जैविक नहीं है, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था का उनके प्रति अन्याय है। वे अधिक काम करती हैं। उनकी कम उम्र में शादी कर दी जाती है और बार-बार गर्भधारण करने के कारण उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। गरीबी के कारण तथा सामाजिक हैसियत के कारण अपर्याप्त व अपौष्टिक भोजन मिलने के कारण स्त्री का स्वास्थ्य पुरुष के मुकाबले में खराब है। उसके काम की स्थितियां भी अच्छी नहीं हैं। घर में रसोई व महिला की जगह सबसे बुरी हालत में होती है। वे दूषित वातावरण के बीच थकाने वाले घरेलू काम करती हैं। उसे कोई आराम नहीं मिलता। उसका कोई साप्ताहिक अवकाश नहीं होता। उसे एकान्त नहीं मिलता। अक्सर तो शौचालय भी नहीं होते। इलाज की उचित सुविधाएं न होने के कारण उनका स्वास्थ्य एक बार बिगड़ जाने पर बिगड़ ही जाता है। वे इस तरह की आवश्यक सेवाएं प्रदान करती हैं, जैसे खाना बनाना, बच्चों का ख्याल रखना

आदि, कि उनको छोड़कर वह इलाज के लिए नहीं जा सकती। अपना काम निपटाकर ही वह इलाज के लिए जा सकती है और उसका काम कभी समाप्त ही नहीं होता। अस्पताल में अधिकतर पुरुष डॉक्टर हैं जिस कारण वे शर्म व संकोच के कारण भी बीमारी का खुलकर जिक्र नहीं कर पातीं। अस्पतालों में अक्सर भीड़ के सामने जांच की जाती है, यह भी उनके इलाज में एक बाधा है। गरीबी व धन का अभाव भी खराब स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है।

सरकारी-नीतियां भी स्त्रियों की समस्याओं को विशिष्ट रूप में नहीं पहचानती। सरकारी स्वास्थ्य नीति सिर्फ परिवार नियोजन को ही महत्त्वपूर्ण मानती है। उसी के प्रति जागरूक किया जाता है या फिर अधिकांश धन 'एड्स' विरोधी प्रचार में बहा दिया जाता है। औरतों व बच्चों की अन्य बीमारी जैसे खून की कमी आदि को छुआ ही नहीं जाता। लगभग 85 प्रतिशत महिलाओं में खून की कमी पाई जाती है। वे जल्दी बूढ़ी हो जाती हैं। परिवार में किसी भी समस्या का सबसे अधिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है। परिवार पर आए किसी भी तरह के संकट से सबसे पहले स्त्री को अवसाद, तनाव व दबाव में जीना पड़ता है।

महिलाओं पर हिंसा

महिलाएं घर पर, कार्यक्षेत्र पर, सार्वजनिक स्थानों पर, स्कूलों-कॉलेजों में, बसों में पुरुषों की हिंसा का शिकार होती हैं। स्त्रियों के प्रति हिंसा की जड़ पितृसत्ता की सदियों से जारी भेदभाव व पक्षपात में हैं। महिला पर अपनी शक्ति प्रदर्शित करने और उसे नियंत्रित करने के लिए पुरुष उस पर हिंसा का प्रयोग करता है। बलात्कार, यौन-उत्पीड़न, छेड़छाड़, मार-पिटाई, अपहरण, देह-व्यापार, दहेज-हत्या, सती, शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न, कन्या-भूण हत्या, बालिका-हत्या आदि महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के रूप हैं।[3] लड़कियों की वेश-भूषा को लेकर, उनकी चाल को लेकर फब्तियां कसना व गंदी भाषा का प्रयोग उनको असहज व हमेशा सतर्क रखता है। बसों में सीट देने के बहाने उनके शरीर को छूना, वासनामय संकेत करना, पीछा करना, घूरना, रास्ता रोक लेना व फोन पर धमकी देना आदि भी उत्पीड़न का ही एक रूप हैं। भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक हिंसा भी शारीरिक हिंसा जितनी ही हानिकारक होती है। बस के ड्राईवर का अपने 'बैक मिरर' में महिला को लगातार वासनामय नजरों से देखना उसको असहज करने के लिए काफी है, जिससे महिला के लिए सफर यातना दायक

बन जाता है। महिला के चरित्र पर संदेह करना भी ऐसी ही हिंसा है। इच्छाओं को कुचलना भी हिंसा का ही रूप है जैसे उसकी पसन्द के कपड़े न पहनने देना, उसकी रूचि के कामों पर पाबन्दी लगाना भी एक हिंसा ही है। स्त्री के साथ खान-पान, रहन-सहन में भेदभाव भी हिंसा का एक रूप है। हिंसा का डर, भय, मानसिक-उत्पीड़न स्त्री में अवसाद व तनाव का विकार पैदा करता है। मानसिक हिंसा के परिणामस्वरूप वे अपने ऊपर ध्यान नहीं देती। वे अन्तर्मुखी हो जाती हैं और उनमें जीने की इच्छा समाप्त हो जाती है। बाहरी लोगों द्वारा की जाने वाली हिंसा की तरह परिवार में की जाने वाली हिंसा भी बहुत खतरनाक है। अक्सर माना जाता है कि शराब के कारण लोग स्त्री की पिटाई करते हैं स्त्री की पिटाई का कारण शराब नहीं है। यह इसमें बढ़ावा अवश्य देती है। जो लोग औरत की पिटाई करते हैं वे मानसिक रूप से बीमार नहीं होते। अच्छे खासे पढ़े-लिखे व ऊंचे ओहदों पर काम करने वाले लोगों द्वारा भी स्त्री को पीटने के काफी मामले प्रकाश में आए हैं। **आमतौर पर पति और पत्नी के विवाद-झगड़े को उनका 'आपसी मामला' ही माना जाता है।** जिसमें बाहरी किसी आदमी को कोई दखल देने की इजाजत नहीं है। जब झगड़े को व्यक्तिगत श्रेणी में डाल दिया गया है तो स्वाभाविक है कि पति द्वारा पत्नी की पिटाई भी व्यक्तिगत ही मानी जायेगी। इसका परिणाम यह निकलता है कि जब कोई पुरुष अपनी पत्नी को पीटता है तो कोई उसको छुड़ाने की भी नहीं सोचता। औरत के पास चुपचाप पिटने के अलावा कोई चारा नहीं रहता। यदि वह पिटाई का विरोध करती है तो समाज की प्रताड़ना का शिकार होती है।

छोटी बालिकाओं पर बलात्कार व हिंसा के ज्यादातर मामले घर-परिवार के लोग, जानकार व रिश्तेदार ही करते हैं।[4] वे उन पर भरोसा करती हैं। जिसका वे नाजायज लाभ उठाकर हिंसा का शिकार बना लेते हैं। इस तरह के मामले इसलिए प्रकाश में नहीं आते कि लोग अपनी इज्जत बचाने के लिए बात दबा देते हैं। यौन-उत्पीड़ित व हिंसा की शिकार महिला के लिए कोई सहानुभूति समाज से नहीं मिलती। वह समाज की घृणा का व प्रताड़ना का ही शिकार होती है। पुरुष-प्रधान समाज में पीड़ित महिला को सहानुभूति नहीं मिलती। जिस स्त्री से बलात्कार हो जाता है वह समाज में उपहास का पात्र बन जाती है।

जब तक बलात्कार को 'इज्जत लुटने' के साथ जोड़कर देखा जाता है तब तक पीड़ित स्त्री को ही दोषी माना जाता रहेगा। क्योंकि

'इज्जत' तो स्त्री की ही लुटती है, ऐसा माना जाता है, और उसका सारा खामियाजा स्त्री को भुगतना पड़ता है। पुरुष-प्रधान समाज में परिवार की इज्जत को बचाने की जिम्मेवारी सिर्फ स्त्रियों पर होगी तब तक वह निर्दोष होकर भी सजा पाती रहेगी। परिवार की 'इज्जत' को यौन शुचिता के साथ जोड़ना व इसका पूरा दायित्व स्त्री पर डाल देने की धारणा को बदलने की जरूरत है। इस मान्यता के कारण ही सारा दोष स्त्री पर आता है। लड़का और लड़की में प्रेम होने से और समाज की अस्वीकार्यता के कारण घर से भाग जाते हैं, तो आमतौर पर यही सुनने में आता है कि फलां की लड़की भाग गई। कभी यह नहीं कहा जाता कि फलां का लड़का भाग गया। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि इज्जत लुट गई है या इज्जत खत्म हो गई है, इसलिए स्त्री कई बार आत्महत्या तक कर लेती है। यदि कोई लड़की परिवार की इच्छा के विरुद्ध अपनी पसन्द से शादी कर लेती है तो परिवार के लोग अपनी 'इज्जत' के नाम पर उसकी हत्या कर देते हैं। इसके विपरीत स्त्री पर अत्याचार या हिंसा या उसको किसी भी रूप में पीड़ा पहुंचाने वाले पुरुष को समाज कभी कठोर दण्ड नहीं देता। ऐसा माना जाता है कि जैसे यह तो उसका स्वाभाविक अधिकार है। जब कोई किसी को अपमानित करना चाहता है और इस काम के लिए गाली देता है तो सारी गालियां औरतों को ही दी जाती हैं। रिश्तेदारी में स्त्री पक्ष के रिश्तों को गालियों के तौर पर प्रयोग किया जाता है। साला, ससुर आदि को गाली ही माना जाता है। स्त्री पर बदले की भावना से भी हिंसा की जाती है। देखने में आया है कि साम्प्रदायिक दंगों के दौरान, जातिवादी हिंसा के दौरान, पारिवारिक रंजिश के चलते बदला लेने के लिए स्त्री से बलात्कार किया जाता है। चूंकि स्त्री सबसे आसान निशाना है, इसलिए वह सबसे पहले शिकार होती है। बलात्कार बदला लेने का हथियार बन जाता है। पुरुषों की लड़ाई में अक्सर महिलाएं शिकार होती हैं।

लिंग के आधार पर स्त्री व पुरुष में भेदभाव करना समाज के स्वास्थ्य के लिए उचित नहीं है लेकिन निहित स्वार्थों की वजह से यह व्यवस्था जारी है। इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था में स्त्री का तो दैहिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक शोषण होता ही है लेकिन साथ ही पुरुष भी श्रेष्ठता बोध के कारण मानवीय व्यवहार नहीं कर पाता। स्त्री-पुरुष में भेदभाव करने वाले विचार को त्यागकर बराबरी के व्यवहार के आधार पर ही सुखी, समृद्ध व सुन्दर समाज का निर्माण हो सकता है। जब स्त्री-मुक्ति की बात करते हैं तो किसी दूसरे की

बात नहीं कर रहे होते बल्कि अपनी बहन, बेटी, मां, पत्नी के बारे में भी सोच रहे होते हैं। समाज को सभ्यता की कसौटी पर खरा उतरने के लिए स्त्री व पुरुष में भेदभाव को छोड़कर स्त्री मुक्ति के रास्ते तलाशने व बनाने होंगे। ऐसी भाषा व परम्परा विकसित करनी होगी जिसमें लिंग के आधार पर स्त्री व पुरुष में कोई भेदभाव न हो।

1. तालिका-1

अखिल भारतीय स्तर पर लिंग-अनुपात

सन	पुरुष	स्त्री
1901	1000	972
1911	1000	964
1921	1000	955
1931	1000	950
1941	1000	945
1951	1000	946
1961	1000	941
1971	1000	930
1981	1000	934
1991	1000	927
2001	1000	933

तालिका-2

अखिल भारतीय स्तर पर 0 से 6 वर्ष आयु समूह में **लिंग**-अनुपात

सन	पुरुष	स्त्री
1961	1000	976
1971	1000	964
1981	1000	962
1991	1000	945
2001	1000	927

आशीष बोस, पापुलेशन ऑफ इण्डिया, बी.आर.पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली (2001), पृ.-20

2. अलग-अलग जन्तुओं में लिंग निर्धारण का तरीका अलग-अलग होता है कुछ जन्तुओं में निषेचन के बाद अंडे से नर या मादा कुछ भी बन सकता है। इनमें से क्या बनेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि अंडे का आगे का विकास किस तापमान पर होता है। इसी प्रकार से कुछ जंतुओं में तो ऐसा भी देखा गया है कि दो तरह के अंडे होते हैं - एक निषेचित व दूसरे अनिषेचित। इनमें से एक तरह के अंडों से नर बनते हैं, जबकि दूसरी तरह के अंडों से मादा।

मगर इन्सानों में लिंग निर्धारण का तरीका कोशिका में उपस्थित गुण-सूत्रों यानि क्रोमोसोमों के आधार पर होता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में गुणों का हस्तांतरण गुणसूत्रों के माध्यम से होता है। इंसानों में कुल तेईस जोड़ी गुणसूत्र होते हैं। प्रत्येक जोड़ी का एक सूत्र मां से तथा दूसरा पिता से प्राप्त होता है। इनमें से बाईस जोड़ियों में तो दोनों गुणसूत्र एक जैसे होते हैं मगर तेईसवीं जोड़ी के दोनों गुणसूत्र एक समान भी हो सकते हैं और भिन्न भी हो सकते हैं। एक को X तथा दूसरे को Y गुणसूत्र कहा जाता है। इन्हें लिंग गुणसूत्र कहते हैं। स्त्रियों में तेईसवीं जोड़ी के दोनों गुणसूत्र X होते हैं जबकि पुरुषों में एक X और दूसरा Y होता है।

स्त्री : 22 जोड़ियां + XX	पुरुष : 22 जोड़ियां + XY

जब जनन कोशिका (अंडाणु या शुक्राणु) का निर्माण होता है तब उनमें प्रत्येक जोड़ी का कोई एक गुणसूत्र जाता है। तो अंडाणुओं के मामले में,

अंडाणु-1 = 22 गुणसूत्र + X और अंडाणु-2 = 22 गुणसूत्र + X

अर्थात् दोनों अंडाणु एक समान होते हैं।

लेकिन दूसरी ओर शुक्राणुओं के मामले में,

शुक्राणु-1 = 22 गुणसूत्र + X और शुक्राणु-2 = 22 गुणसूत्र + Y

अर्थात् शुक्राणु दो तरह के होते हैं। इन्हें हम X और Y शुक्राणु कह सकते हैं।

अब निषेचन के समय अंडाणु (जो सदैव X होता है) के साथ या तो X शुक्राणु का मेल होगा या Y शुक्राणु का। यदि X शुक्राणु से मेल हुआ तो तेईसवीं जोड़ी XX बनेगी। यह अंडा विकसित होकर मादा यानी लड़की को जन्म देगा। दूसरी ओर यदि Y शुक्राणु से मेल हुआ तो तेईसवीं जोड़ी XY बनेगी और इस अंडे से लड़का विकसित होगा।

शुद्ध जीव विज्ञान की दृष्टि से लड़का लड़की बनना केवल संयोग की बात है। किसी भी पुरुष के वीर्य में लगभग बराबर मात्रा में X और Y शुक्राणु होते हैं। इनमें से कौन-सा शुक्राणु अंडाणु का निषेचन करेगा, यह तो पूरी तरह संयोग की बात है। इस छोटे से संयोग को लेकर इतना बावेला मचाना, लांछन लगाना, कहां तक उचित है?

सामाजिक लिंगभेद और हम, सहयोगिनी 2003, पृ.-55

TABLE- 3

Crime Against Women during 1998-2002

S.No.	Crime	Year 1998	1999	2000	2001	2002
1.	Rape	15151	15468	16496	16075	16373
2.	Kidnapping & Abduction	16351	15962	15023	14645	14506
3.	Dowry Death	6975	6699	6995	6851	6822
4.	Torture	41376	43823	45778	49170	49237
5.	Molestation	30959	32311	32940	34124	33943
6.	Sexual Harasshment	8054	8858	11024	9746	10155
7.	Importation of Girls	146	1	64	114	76
8.	Sati Prevention Act	0	0	0	0	0
9.	Immoral Traffic (P) Act	8695	9363	9515	8796	11242
10.	Indecent Rep. of Women (P) Act	190	222	662	1052	2508
11.	Dowry Prohibition Act	3578	3064	2876	3222	2816
	Total	**131475**	**135771**	**141373**	**143795**	**147678**

Crime in India, 2002, **National Crime Bureau, Ministry of Home Affairs, Govt. of India, New Delhi, P.-266**

4. हरियाणा में आयु समूह के अनुसार बलात्कार के मामले (2002)

10 वर्ष तक	10-14	14-18	18-30	30-50	50 से ऊपर	कुल
29	49	06	237	39	1	361

2002 के दौरान सम्बन्धी व नजदीकी रिश्तेदारों द्वारा बलात्कार के मामले

पीड़ित के जानकारों द्वारा बलात्कार के कुल मामले	मां-बाप/ परिवार के सदस्य	सम्बन्धी	पड़ोसी	अन्य जानकार व्यक्ति
292	52	8	90	142

Crime in India, 2002, National Crime Bureau, Ministry of Home Affairs, Govt. of India, New Delhi

देश की बेटियां

कमला भसीन
नई दिल्ली

देश में गर बेटियां अपमानित हैं, नाशाद हैं,
दिल पे रखकर हाथ कहिये देश क्या आजाद है।

जिनका पैदा होना ही अनशकुन है, नापाक है,
औरतों की जिंदगी ये जिंदगी क़्या ख़ाक है।

बेटा हो पैदा तो घर में खूब ही खुशियां मनें,
कोसी जाएं माएं वो ग़ल्ती से जो बेटी जनें।

बेटे को दीपक कहें, राजा कहें, सम्मान दें,
बस चले तो बेटियों को जान से ही मार दें।

अपनी मां ही बेटियों को सब से कम परसा करे,
अपने ही आंगन में वो इंसाफ़ को तरसा करे।

बेटी वो पौध है जिसको रोशनी न जल मिले,
ऐसा है वो फूल जो खिल सकता है पर न खिले।

चूल्हा चौका चारदीवारी बचपन में सौंपे गए,
ढेर जिम्मेदारियों के जबरन ही थोपे गए।

क्या है बचपन, क्या शैतानी और नादानी है क्या,
बेटियां न जान पाईं मौज के मानी हैं क्या।

बंदिशों में बांध के प्रतिभाओं को कुचला गया,
कुदरत की कुव्वतों को खूब ही मसला गया।

न ये बोलें, न ये डोलें, मन की कुछ न कर सकें,
काटे गए हैं पंख इनके, ऊंची ये न उठ सकें।

आधी सेहत, आधी शिक्षा, मजदूरी आधी मिली,
देश हुआ आज़ाद पर इनको ना आज़ादी मिली।

कम उमर में शादी की गाड़ी में ये जोती गईं,
बच्चियां बन बन के माएं जिंदगी खोती गईं।

बदनीयत से भी डरें और हर नज़र से ये डरें,
फ़रियाद ये किस से करें गर हाथ अपनों के बढ़ें।

चेहरा फीका नज़रें नीची कैसी ये बुझ सी गईं,
ये न हों रोशन तो होगा कोई घर रोशन नहीं।